© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

काव्य स्वरूप निर्णय

शिवानन्द शुक्ल
विभागाध्यक्ष साहित्य
श्री सच्चा अध्यात्म संस्कृत महाविद्यालय,
अरैल, इलाहाबाद।

शोध-पत्र का प्रारूप

भूमिका

(अ) प्रकृत विषय में स्वप्रवृत्ति

(इ) कवि

(उ) काव्य

काव्यलक्षण परम्परा

1. शब्दमात्रकाव्यवादी परम्परा

1.1. शब्दार्थोभय के काव्यत्व में विसङ्गति तथा शब्द मात्र के काव्यत्व में प्रमाण

1.2. शब्दमात्र काव्यवादी आचार्यों के काव्यलक्षण तथा विश्लेषण

1.2.1. दण्डी

1.2.2. अग्निपुराण

1.2.3. जयदेव

1.2.4. विश्वनाथकविराज

1.2.5. पण्डितराजजगन्नाथ

1.2.6. केशवमिश्र

2. शब्दार्थोभयकाव्यवादी परम्परा

2.1. शब्दमात्र की काव्यता का निराश तथा शब्दार्थोभय के काव्यत्व में प्रमाण

2.2. शब्दर्थोभयकाव्यवादी आचार्यों के काव्यलक्षण तथा विश्लेषण

2.2.1. भरतमुनि

2.2.2. भामह

2.2.3. वामन

2.2.4. आनन्दवर्धन

2.2.5. राजशेखर

2.2.6. रुद्रट

2.2.7. अभिनवगुप्तपादाचार्य

2.2.8. भोजराज

2.2.9. कुन्तक

2.2.10. मम्मट

2.2.11. हेमचन्द्र

2.2.12. वाग्भट

2.2.13. गोविन्दठक्कुर

2.2.14. समुद्रबन्ध

2.2.15. विद्यानाथ

2.2.16. विद्याधर

भूमिका

(अ) प्रकृत विषय में स्वप्रवृत्ति

भारतीय परम्परा में पुरुषार्थचतुष्टय प्राप्ति ही मनीषियों का लक्ष्य रहा है। धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष ये पुरुषार्थ चतुष्टय कहलाते हैं। जिनमें प्रथम धर्म है तथा धर्म के अनन्तर धर्म से अर्थ प्राप्ति ,धर्म तथा अर्थ से काम प्राप्ति, अन्त में धर्म अर्थ तथा काम इन तीनों पुरुषार्थ रूप साधनों से मोक्ष की प्राप्ति। विविध दर्शनों में आचार्यों ने मोक्ष का भिन्न भिन्न स्वरूप प्रतिपादित किया है तथापि सभी आचार्यों के मत में धर्म अर्थ काम ये तीन साधन भूत हैं तथा मोक्ष प्राप्ति ही परम प्रयोजन है इसमें लेश मात्र सन्देह नहीं है। जिस प्रकार मोक्ष के स्वरूप के विषय में आचार्य एकमत नहीं है उसी प्रकार पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति के साधन भूत उपायों के सन्दर्भ में भी आचार्यों ने विविध मार्ग प्रतिपादित किए हैं। विविध दर्शनों में प्रतिपादित मोक्षावाप्ति के विविध उपाय दुःसाध्य हैं तथा इन उपायों से सुधी ऋषि मनीषियों को ही मोक्षावाप्ति है। जबकि काव्य मार्ग से सुखपूर्वक अल्पधियों के द्वारा भी मोक्ष प्राप्ति सम्भव होने से काव्य मार्ग रुचिर प्रतीत होता है।[1] यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहारज्ञान, अमङ्गल की क्षति, विगलित वेद्यान्तर आनन्दावाप्ति, कान्तासम्मितोपदेश, चतुर्वर्गफलप्राप्ति, कीर्ति तथा प्रीति रूप अनेक प्रयोजनों के साधक काव्य के स्वरूप की जिज्ञासा से प्रकृत शोध पत्र लेखन में मेरी प्रवृत्ति हुई।

कवि तथा काव्य

(इ) कवि

कवि शब्द की निष्पत्ति के सन्दर्भ में हमारे सम्मुख चार धातुएं हैं जिनसे कवि शब्द निष्पन्न हो सकता है -

1. कबृ वर्णे (भ्वादि)
2. कु शब्दे (भ्वादि)
3. कुङ् शब्दे (अदादि)
4. कुङ् कूङ् वा शब्दे (तुदादि)

कवते इति कौतीति वा इस विग्रह में कुङ् शब्दे इस धातु से अचः इः 'इ' प्रत्यय कर गुण अवादेश करने से कवि शब्द निष्पन्न होता है। यद्यपि यह धातु शब्दार्थक है तथापि इस धातु का विलक्षण वर्णन अर्थ में ही पर्यवसान होता है एवं वर्णन विलक्षण शब्दात्मक और विलक्षण ज्ञानात्मक होता है।[2] अर्थात् वर्णन विशेष में ही कवि शब्द का तात्पर्य है।

दर्शन वैदुष्य होने पर भी वाल्मीकि कि तब तक कवि संज्ञा नहीं हुई जब तक वाल्मीकि ने वर्णना नहीं की। ''नहि कवेरितिवृत्तवर्णनमात्रेणात्मपदलाभो भवति''[3] ध्वनिकार की इस उक्ति से प्रतीत होता है कि विलक्षण वर्णन करने वाला ही कवि होता है। ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन की इस उक्ति से दो बातें प्रतीत होती हैं - प्रथम तो यह कि वर्णन करने वाला ही कवि कहलाएगा। और दूसरी यह कि इतिवृत्त के वर्णन मात्र से कोई कवि नहीं कहलाता; अपितु लोक से विलक्षण चमत्कारकारी वर्णन करने वाला ही कवि कहलाएगा। आचार्य मम्मटभट्ट भी लोकोत्तरवर्णनानिपुण को कवि कहते हैं।[4] राजशेखर ने सहृदय कवि की विवेचना करते हुए कहते हैं- यो हृदय एव कवते निह्नुते च स सहृदयकविः।[5]

'अकथितं च' सूत्र व्याख्यान में भाष्यकार पतञ्जलि ने कवि शब्द का प्रयोग किया है - 'तदकीर्तितमाचरितम् कविना'। इस कवि शब्द की व्याख्या में आचार्य कैयट कहते हैं - कविशब्दो मेधाविवचनः क्रान्तदर्शनादिति कैयटः। (प्रदीप)। यहीं नागेशभट्ट कहते हैं - कविः क्रान्तदर्शनो भवति इति निरुक्तात्। क्रान्तानि दर्शनानि येनेति। उक्तञ्च -

जानीतो यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिनः।

---

[1] चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यदेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥ (साहित्यदर्पण पृ०03)

[2] रसगङ्गाधर २/२०९प०

[3] ध्वन्यालोक ---।

[4] लोकोत्तरवर्णनानिपुणः कविः। (काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास पृ० 10)

[5] का०मी० ५/४८ पृ०।

जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कविः स्वयम्॥

(उ) काव्य

कवेः कर्म इस विग्रह से ''इगन्ताच्च लघुपूर्वात्[6] इस सूत्र से प्राप्त ण' को बाधकर ब्राह्मणादिगण के आकृतिगण होने से ''गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि ष्यञ्[7]'' प्रत्यय से काव्य शब्द निष्पन्न हुआ है। इस प्रकार चमत्कारि वर्णना निपुण कवि तथा कवि का कर्म काव्य कहलाता है।

काव्य अर्थ विशिष्ट शब्द रूप अथवा शब्दार्थोभय[8] रूप है। ऐसी दशा में अर्थ विशिष्ट शब्द अथवा शब्दार्थोभय रूप काव्य में कवि कर्मता कैसे होगी। शब्द के नित्य होने से कवि शब्द का निर्माण नहीं करता है, परन्तु अर्थ के वाचक अनेक शब्द होने पर भी कवि उस अर्थ विशेष के प्रतिपादन में क्षम किसी विलक्षण शब्द विशेष का ही ग्रहण करता है। यथा-

''द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागमप्रार्थनया कपालिनः।''

यहाँ भगवान शङ्कर रूप अर्थ को कपालि तथा पिनाकि दोनों ही शब्द कहते हैं तथापि कवि ने पिनाकि शब्द का प्रयोग न कर कपालि शब्द का प्रयोग किया हैं क्योंकि कपालि शब्द ही कपालास्थि धारणरूप अशुचि विभत्सादि अर्थ का बोधक होने से शोचनीयता का उपपादन कर काव्यानुगुण है न कि पिनाकि शब्द। पिनाक धारण रूप अर्थावगम से वीर रस का प्रत्यायक होने से शोचनीयता रूप उक्ति असङ्गत होती। इस प्रकार कविकर्मता मुख्य रूप से अर्थ में है तथा अर्थानुकूल शब्द के चयन तथा शब्द गुम्फन में है।

अर्थ दो प्रकार का होता है- (१) स्वतः सम्भवी (२) कविप्रौढोक्तिसिद्ध। यद्यपि स्वतः सम्भवी अर्थ लोक में दिखाई देता है फिर भी कवि उसे यथा तथ्य नहीं स्वीकार करता है अपितु अपनी प्रतिभा से उसमें अपूर्वता का समावेश कर ही स्वीकार करता है। कान्तासम्मिततयोपदेश के लिए काव्य में दोषगुण विशष्टि लोकप्रसिद्ध नायकादि का वर्णन नहीं करता, अपितु दोषों को हटाकर विलक्षण गुणशालिता का समावेश कर विर्णित करता है अन्यथा प्रेक्षकों की काव्य में प्रवृत्ति ही नहीं होती। अतः काव्य के नायकादि कविप्रतिभा प्रसूत ही होते हैं। नायिकाओं के अङ्ग अथवा व्यवहार जो काव्य में वर्णित हैं वे सभी कविप्रतिभाप्रसूत होने से कविनिर्मित ही हैं।

कविप्रौढोक्ति सिद्ध अर्थ कवि प्रतिभा प्रसूत होने से कवि निर्मित ही होता है। इस प्रकार अर्थ की भी कविकर्मता सिद्ध होती है।

काव्यलक्षण परम्परा

उस चमत्कारकारी अर्थ के उपपादन में शब्द का ही सामर्थ्य है ऐसा स्वीकार कर तथा काव्य शब्द की योगबल के अनुरोध से कुछ आचार्य[9] अर्थ विशेष के प्रतिपादक शब्द को काव्य स्वीकार करते हैं, कुछ आचार्य कविसंरम्भविषयतया अर्थ का भी प्राधान्य अङ्गीकार कर अर्थ को ही काव्य कहते हैं।[10] परन्तु यह वाग्विकल्प मात्र है। कुछ आचार्य काव्य में शब्द तथा अर्थ दोनों का प्राधान्य प्रतिपादित कर शब्दार्थोभय की काव्यता प्रतिपादित करते हैं। इस प्रकार काव्य के स्वरूप प्रतिपादन में दो धारायें सम्प्रति प्रवहमान हैं - शब्दमात्रकाव्यवादी धारा तथा शब्दार्थोभयकाव्यवादी धारा।

1. शब्दमात्रकाव्यवादी परम्पर

1.1. शब्दार्थोभय के काव्यत्व में विसङ्गति तथा शब्द मात्र के काव्यत०्व में प्रमाण

* शब्दार्थयुगल को काव्य मानने में प्रमाण का अभाव है-

---

[6] पा०सू० ५/१/१३१

[7] पा०सू० ५/१/१२४।

[8] जगत के लिए काव्य पद व्यवहार - काव्य शब्दार्थमय है और यह जगत भी। अतः इस दृश्यमान जगत के लिए भी काव्य पद का व्यवहार किया गया है -
नामरूपात्मकं विश्वं यदिदं दृश्यते द्विधा।
तत्राद्यस्य कविर्वेधा द्वतीयस्य चतुर्भुजः॥

[9] आचार्य दण्डी पण्डितराजजगन्नाथादि।

[10] केषाञ्चिन्मतं कविकौशलकल्पितकमनीयातिशयः शब्द एव केवलं काव्यम् इति, केषाञ्चिद् वाच्यमेव रचनावैचित्र्य चमत्कारि काव्यम् इति। (वक्रोक्तिजीवित, 1/17 की वृत्ति)

शक्तिग्राहक प्रमाणों में व्यवहार सबसे प्रबल प्रमाण है। काव्यमुच्चैः पठ्यते, काव्यादर्थोऽवगम्यते, काव्यं श्रुतम् अर्थो न ज्ञातः इत्यादि लोक प्रचलित व्यवहारों में शब्द मात्र के लिए काव्य पद का व्यवहार किया गया है, अर्थ के लिए काव्य पद का व्यवहार नहीं हुआ है। अतः व्यवहार प्रमाण से शब्द मात्र की ही काव्यता सिद्ध होती है न कि शब्दार्थयुगल की।

मम्मटभट्ट आदि आलङ्कारिकों ने शब्दार्थयुगल को काव्य कहा है। मम्मट भट्ट आदि पूर्वाचार्यों द्वारा शब्दार्थयुगल में काव्यत्व प्रतिपादन को आधार मानकर शब्द प्रमाण द्वारा शब्दार्थोभय की काव्यता अ□ङ्गीकार की जाए तो यह भी उचित नहीं क्योंकि आप्त पुरूष द्वारा प्रतिपादित वाक्य ही शब्द प्रमाण होता है और विमत वक्ता ही अश्रद्धेय होता है उसका आप्तत्व ही सन्दिग्ध है ऐसी दशा में उसके द्वारा प्रतिपादित वाक्य शब्दप्रमाण कैसे हो सकता है।

यदि शब्दमात्र में काव्यपद का व्यवहार लाक्षणिक माना जाए तो इस व्यवहार में मुख्यार्थबाधादि हेतु क◌ा अभाव होने से इसे लाक्षणिक भी नहीं माना जा सकता। जिस प्रकार गङ्गायां घोषः इस उदाहरण में गङ्गानिष्ठ आधारता निरूपित आधेयतावान् घोषः यह मुख्यार्थ स्वीकार करने पर प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा यह मुख्यार्थ बाधित हो जाता है क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से यह सिद्ध है कि जलप्रवाह घोष का आधार नहीं बन सकता तब मुख्यार्थ बाध के अनन्तर जलप्रवाह रूप अर्थ की लक्षणा तट रूप अर्थ में की जाती है।

जिस प्रकार जल प्रवाह घोष का आधार नहीं बन सकता यह प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है तब गङ्गायां घोषः इस प्रयोग में जलप्रवाह रूप अर्थ की लक्षणा तट रूप अर्थ में की जीती है उसी प्रकार यदि शब्दार्थोभय का काव्यत्व किसी दृढतर प्रमाण से सिद्ध होता तब यदि शब्द मात्र में काव्य पद का व्यवहार किया जाता तो लक्षणा से शब्द से ही शब्दार्थोभय का बोध हो सकता था। परन्तु शब्दार्थोभय के काव्यत्व ही किसी दृढतर प्रमाण से सिद्ध नहीं है तो शब्द मात्र में काव्य पद के व्यवहार को हम लाक्षणिक भी नहीं मान सकते।

यदि बलात् हम काव्यत्व को शब्दार्थ युगल में स्वीकार कर भी लें तो काव्यपद का प्रवृत्तिनिमित्त[11] काव्यत्व शब्दार्थयुगल में व्यासज्यवृत्ति से है अथवा प्रत्येक पर्याप्त वृत्ति से-

व्यासज्यवृत्ति से काव्यत्व शब्दार्थयुगल में रह नहीं सकता क्योंकि जिस प्रकार दो में द्वित्व व्यासज्यवृत्ति दो में रहता है तो एक में दो का व्यवहार नहीं किया जा सकता उसी प्रकार यदि शब्दार्थयुगल में काव्यत्व व्यासज्यवृत्ति से होगा तो श्लोक मात्र में काव्यपद का व्यवहार नहीं हो पायेगा।

प्रत्येक पर्याप्त वृत्ति से भी काव्यत्व शब्दार्थोभय में नहीं रह सकता क्योंकि प्रत्येक पर्याप्त वृत्ति से काव्यत्व को शब्दार्थोभय में मानेगें तो श्लोक वाक्य काव्य तथा अर्थ काव्य इस प्रकार एक ही काव्य में काव्यद्वय व्यवहार होने लगेगा।

यदि आस्वादोद्बोधकत्व को काव्यत्व का प्रयोजक माना जाए और आस्वादोद्बोधकत्व के शब्द तथा अर्थ दोनों में समान होने से शब्दार्थोभय को काव्य माना जाए ऐसी दशा में ध्वनिकारादि समस्त आलङ्कारिकों ने राग◌ादि की रसव्य□ञ्जकता प्रतिपादित की है तो राग में आस्वादोद्बोधकत्व होने से राग को भी काव्य मानना पड़ेगा तथा प्रायः समस्त नाट्य□ङ्गों में भी रसव्य□ञ्जकता होने से सभी में काव्यत्व की आपत्ति दुर्वार होगी।

इस प्रकार शब्दार्थोभय में काव्यपद की शक्ति के ग्राहक प्रमाण का अभाव होने से तथा शब्दार्थयुगल के काव्यत्व प्रतिपादन में एकतर पक्षपातिनी युक्ति रूप विनिगमना के अभाव होने से पूर्वोक्त प्रमाण सिद्ध शब्दमात्र की ही काव्यता का अ□ङ्गीकार करने में क्या हानि है। अतः वेदशास्त्रपुराण लक्षण के समान काव्य की भी शब्दनिष्ठता ही उचित है।[12]

1.2. शब्दमात्र काव्यवादी आचार्यों के काव्यलक्षण-

1.2.1. दण्डी -

आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श में इष्ट (रमणीय) अर्थ से युक्त पदावली को काव्य का शरीर कहा है-

---

[11] वाच्यत्वे सति वाच्यवृत्तित्वे सति वाच्योपस्थिति प्रकारताश्रयत्वम्।

[12] रसगङ्गाधर प्रथमानन।

'शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली'[13]

यद्यपि लक्षण घटक व्यवच्छिन्न पद का अर्थ समुच्चय होने से इष्ट अर्थ से समुच्चित पदावली को काव्य का शरीर प्रतिपादित किया गया है तो भी यहाँ ग्रन्थ स्वारस्य से आचार्य दण्डी का अभिप्राय इष्ट रमणीय अर्थ विशिष्ट पदावली अर्थात् शब्द मात्र काव्य है ऐसा प्रतीत होता है।

1.2.2. अग्निपुराण -

आचार्य दण्डी द्वारा प्रदत्त लक्षण ही अग्निपुराण में भी है। यहाँ इष्टार्थ व्यवच्छिन्न पदावली को वाक्य कहा गया है, तथा दोषरहित, गुण और अलङ्कार से युक्त वाक्य ही काव्य कहलाता है।

'संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।

काव्यं स्फुरदलङ्करं गुणवद्दोष वर्जितम् ।।'[14]

1.2.3. जयदेव -

आचार्य जयदेव के मत में वह वाक् काव्य है जो निर्दुष्ट हो, अक्षरसंहति आदि लक्षणों से युक्त हो, रीति से युक्त हो, गुणों से भूषित हो, सालङ्कार हो, सरस हो और अनेक वृत्ति[15] वाली हो।

''निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।

सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनाम भाक्।।''[16]

1.2.4. विश्वनाथकविराज -

आचार्य मम्मट का खण्डन कर विश्वनाथ स्वाभिमत काव्य लक्षण प्रस्तुत करते है-

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।''[17]

आचार्य रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। यहाँ 'रस्यते इति रसः' इस व्युत्पत्ति से रस शब्द से रस भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता सभी गृहीत होते हैं क्योंकि सभी का आस्वाद होता है।

1.2.5. पण्डितराजजगन्नाथ -

आचार्य पण्डितराजजगन्नाथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं-

''रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्''[18]

अर्थात् रमणीयार्थप्रतिपादकत्वे सति शब्दत्वम् काव्यत्वम्। अर्थ के प्रतिपादक व्याकरणादि शास्त्रगत तथा लौकिक शब्दों में अतिव्याप्त वारण के लिए अर्थ में रमणीय विशेषण दिया गया है। अर्थ में रमणीय विशेषण होने से व्याकरणादि शास्त्रगत एवं लौकिक शब्द अर्थ के प्रतिपादक तो हैं परन्तु रमणीय अर्थ के प्रतिपादक न होने से काव्य नहीं कहलाएगें। लक्षण में अर्थ पद के उपादान से रमणीय (साधु) शब्द के प्रतिपादक व्याकरण शास्त्र में लक्षण की अतिव्याप्ति नहीं होगी। रमणीय अर्थ के प्रतिपादक वाचक, लाक्षणिक तथा व्यञ्जक तीनों शब्दों का ग्रहण कराने के लिए साधारण प्रतिपादक शब्द का लक्षण में उपादान किया गया है। कामिनी के कटाक्षादि भी रमणीय अर्थ के प्रतिपादक होते हैं, कटाक्षादि में अतिव्याप्ति वारण के लिए लक्षण में शब्द का ग्रहण किया गया है, क्योंकि कामिनी के कटाक्षादि रमणीय अर्थ के प्रतिपादक तो हैं परन्तु शब्द से प्रतिपादित नहीं हैं।

---

[13] काव्यादर्श १/१०।

[14] अग्निपुराण ३३७/६-७।

[15] उपनागरिका आदि काव्य वृत्ति, भारती आदि नाट्यवृत्ति, अभिधा लक्षणा व्यञ्जना आदि शब्दवृत्ति।

[16] चन्द्रालोक १/६।

[17] साहित्यदर्पण प्रथम परिच्छेद।

[18] रसगङ्गाधर प्रथम आनन।

प्रतिव्यक्ति रुचि भिन्न होने के कारण एक ही वस्तु व्यक्ति विशेष के लिए रमणीय तथा अन्य व्यक्ति के लिए अरमणीय होती है। अतः रमणीयता के व्यक्ति भेद से भिन्न भिन्न होने के कारण एक ही काव्य व्यक्ति विशेष के लिए काव्य तथा अन्य व्यक्ति के अकाव्य होने लगेगा।

जिस प्रकार घट अर्थ का प्रतिपादक घट आनुपूर्वी होता है, पट अर्थ का प्रतिपादक पट आनुपूर्वी होता है उसी प्रकार रमणीय अर्थ का प्रतिपादक 'रमणीय' इत्याकारक आनुपूर्वी शब्द ही होगा। ऐसी दशा में यह काव्य लक्षण रमणीय शब्द मात्र में घटेगा रघुवंशादि काव्य में नहीं। उक्त समस्या के समाधान आचार्य रमणीय शब्द का व्याख्यान करके कहते हैं-

रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता।[19]

लोकोत्तर अर्थात् अलौकिक जो आह्लाद (आनन्द), उस आनन्द का जनक जो ज्ञान, उस ज्ञान का विषय जो अर्थ वह रमणीय है ऐसे रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है। यह लोकोत्तर आह्लाद आह्लादगत चमत्कार का अपर पर्याय है,[20] तथा इस आह्लादगत चमत्कार में कारण है पुनः पुनः अनुसन्धान रूप भावना।[21]

आचार्य पण्डितराजजगन्नाथ यहाँ इस काव्य लक्षण के तीन परिष्कार कहते हैं-

प्रथम परिष्कार- इत्थं चमत्कारजनकभावनाविषयार्थप्रतिपादकशब्दत्वम्।

इस प्रकार चमत्कार (लोकोत्तराह्लाद) की जनिका जो भावना उस भावना का विषय जो अर्थ उस अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है।[22]

पूर्व में आचार्य लोकोत्तर आह्लाद का जनक ज्ञान को कहते हैं (रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनकज्ञानगोचरता), पुनः लोकोत्तर आह्लाद की जनिका भावना को कहते हैं, क्योंकि ज्ञान समूहालम्बनात्मक होता है और काव्य के मध्य संयोगवश ज्ञान का विषय बने घटादि भी ज्ञान के समूहालम्बनात्मक होने से घटादि भी काव्य कहलाने लगेगें। इसलिए आचार्य ने प्रथम परिष्कार में ज्ञान के स्थान पर लोकोत्तर आह्लाद का जनिका भावना को कहा है। भावना कहे जाने से यद्यपि घटपटादि ज्ञान का विषय तो बनते हैं परन्तु इनकी भावना न होने के कारण ये काव्य नहीं कहलाएगें।

द्वितीय परिष्कार-

स्थल विशेष में भावना के भी समूहालम्बनात्मक होने से पुनः आचार्य लक्षण परिष्कार करते हैं-

यत्प्रतिपादितार्थविषयक भावनात्वं चमत्कारजनकतावच्छेदकं तत्त्वम्।[23]

अर्थात् जिस शब्द से प्रतिपादित अर्थ विषयक भावना चमत्कार की जनिका होगी वह शब्द काव्य है।

तृतीय परिष्कार-

द्वितीय परिष्कार में यत् पद का समावेश है और यत् पद सर्वनाम है। सर्वनाम पद सभी अर्थों के वाचक होते हैं अतः यत तदादि सर्वनाम पद अननुगमक होते हैं। द्वितीय परिष्कार में अननुगमक यत् पद के समावेश से लक्षण भी अननुगमक हो जाएगा जबकि लक्षण को अनुगमक होना चाहिए।

यद्यपि यत्तदादि सर्वनाम शब्दों की भी शक्ति अर्थ विशेष में होती है- यत्तदोः बुद्धविषयतावच्छेदकत्वेनोपलक्षिततत्तद्धर्मावच्छिन्ने शक्तिः। परन्तु यहाँ बुद्धिस्थ विषय के अभाव में यत् पद की अर्थ विशेष में शक्ति का निर्धारण सम्भव नहीं है। इसलिए पण्डितराज तृतीय परिष्कार करते हैं-

स्वविशिष्टजनकतावच्छेदकार्थप्रतिपादकतासंसर्गेण चमत्कारत्ववत्त्वमेव वा काव्यत्वम्[24]

---

[19] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 11

[20] लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्वापरपर्यायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेषः (रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 11)

[21] कारणं च तदवच्छन्ने भावनाविशेषः पुनः पुनरनुसन्धानात्मा (रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰12)

[22] इत्थं चमकत्कारजनकभावनावियार्थप्रतिपादक-शब्दत्वम्।

[23] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 13

[24] रसगङ्गाधर प्रथम आनन पृ॰ 13

तृतीय परिष्कार में 'चमत्कारत्ववत्त्वमेव वा काव्यत्वम्' मात्र काव्य लक्षण है, शेष 'स्वविशिष्टजनकतावच्छेदकार्थप्रतिपादकतासंसर्गेण' यह सम्बन्ध मात्र है। 'चमत्कारत्ववत्त्वमेव वा काव्यत्वम्' इस लक्षण में चमत्कार शब्द से त्व प्रत्यय पुनः मतुप् प्रत्यय हुआ है, पुनः मतुबन्त से भाव में त्व प्रत्यय[25] विहित है। वाक्यपदीयकार के 'कृत्तद्धितसमासेभ्यः सम्बन्धाभिधानं भावप्रत्ययेन' इस नियम से तद्धितान्त से विहित भाव प्रत्यय का सम्बन्धमात्र अर्थ होता है।

इस प्रकार चमत्कारत्वविशिष्टः शब्दः काव्यम् यह काव्य लक्षण होगा। अब यहाँ विचारणीय है कि चमत्कारत्व विशिष्ट तो चमत्कार होगा चमत्कारत्व विशिष्ट शब्द कैसे? यहाँ स्वविशिष्टजनकतावच्छेदकार्थप्रतिपादकतासंसर्ग से चमत्कारत्व को हम शब्द में ले जाएगें। स्व अर्थात् चमत्कारत्व और चमत्कारत्वविशिष्टा जनकता, पुनः विचारणीय है कि चमत्कारत्व विशिष्ट तो चमत्कार होगा चमत्कारत्वविशिष्टा जनकता कैसे। अब यहाँ पुनः स्वाश्रयनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकता सम्बन्ध से स्व अर्थात् चमत्कारत्व और चमत्कारत्व का आश्रय चमत्कार, चमत्कार में रहने वाली जन्यता से निरूपित जनकता भावना में होगी। इस भावना का अवच्छेदक जो अर्थ उस अर्थ का प्रतिपादक शब्द काव्य है इस प्रकार लक्षण सङ्गति होती है।

अवच्छेद्य तथा अवच्छेदक का सामानाधिकरण्य नियम कहा गया है। यहाँ अवच्छेद्या है जनकता तथा अवच्छेदक है अर्थ ये दोनों ही भावना में रहते है। जनकता स्वरूप सम्बन्ध से तथा अर्थ विषयिता सम्बन्ध से भावना में रहते हैं इस प्रकार अवच्छेद्या जनकता तथा अवच्छेदक अर्थ दोनों का आश्रय भावना के होनें से अवच्छेद्य तथा अवच्छेदक दोनों का सामानाधिकरण्य सिद्ध होता है।

यद्यपि तृतीय परिष्कार में भी स्व पद सर्वनाम पद है जो कि अननुगमक है तो भी यहाँ यह स्व पद लक्षण घटक नहीं अपितु सम्बन्धघटक है।

इस प्रकार - "समवायसम्बन्धावच्छिन्नचमत्कारत्वावच्छिन्नचमत्कारनिष्ठजनकतानिरूपिता या समवायसम्बन्धावच्छिन्ना भावनात्वावच्छिन्ना भावनानिष्ठाजनकता, तन्निष्ठा या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नाऽवच्छेद्यता, तन्निरूपिता विषयतासम्बन्धाऽच्छिन्नाऽवच्छेदकताश्रयो योऽर्थस्तद्विषयकप्रतिपत्तिजनकत्वे सति शब्दत्वं काव्यत्वमिति निष्कृष्टं लक्षणम्"[26]

1.2.6. केशवमिश्र -

केशवमिश्र ने आचार्य विश्वनाथ का अनुसरण किया है, उन्होनें शौद्धोदनि के अनुसार काव्यलक्षण प्रस्तुत किया है- ''वाक्यं रसादिमत् काव्यं श्रुतं सुखविशेषकृत् ।''[27] रसादिमत् पद में आदि पद से अन्होनें अलङ्कार को भी गृहीत किया है।

2. शब्दार्थोभयकाव्यवादी परम्परा

2.1 शब्दार्थोभय के काव्यत्व में प्रमाण

शब्दार्थोभय के काव्यत्व में आपत्तियों का क्रमशः निराकरण -

जिस प्रकार शब्द मात्र के काव्यत्व में आपके मत में व्यवहार का प्रामाण्य बतलाया गया है उसी प्रकार शब्दार्थोभय के काव्यत्व में भी व्यवहार के प्रामाण्य को स्वीकार करना चाहिए। जिस प्रकार 'काव्यं श्रुतम्' यह व्यवहार होता है उसी प्रकार 'काव्यं बुद्धम् ' यह व्यवहार भी होता है। अर्थात् श्रवणेन्द्रिय के विषय शब्द के लिए जिस प्रकार काव्य पद का प्रयोग 'काव्यं श्रुतम् ' इस व्यवहार में किया जाता है उसी प्रकार ज्ञान के विषय अर्थ के लिए भी 'काव्यं बुद्धम् ' इस प्रकार का व्यवहार किया जाता है। काव्य शब्द को पढकर बिना अर्थज्ञान के 'काव्यं बुद्धम् ' यह व्यवहार कोई नहीं करता।

---

[25] भावस्त्वतलौ

[26] श्रीमम्मटपण्डितराजसिद्धान्तमीमांसा पृ॰19।

[27] अलङ्कारशेखर पृ० २-३)।

काव्य पद का प्रवृत्ति निमित्त काव्यत्व व्यासज्य वृत्ति से शब्दार्थोभय में रहता है, परन्तु केवल श्लोक वाक्य में काव्य पद व्यवहार "समुदाये प्रवृत्तः शब्दोऽवयवेष्वपि वर्तते।"[28] इस सिद्धान्त से अथवा अवयवावयविभाव सम्बन्धमूलक लक्षणा से प्रयुक्त है।

वेद पुराण भी शब्द मात्र नहीं हैं अपितु शब्दार्थोभय रूप ही हैं। जैसा कि "तदधीते तद्वेद"[29] सूत्र के भाष्य में महाभाष्यकार शङ्का कर समाधान देते हैं कि अधि पूर्वक इक् धातु तथा विद् धातु दोनों ही ज्ञानार्थक हैं तो दोनो का सूत्र में पृथक् निर्देश क्यों? इसका समाधान करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि यहाँ अधि पूर्वक इक् धातु संशन अर्थ में है। संशन का अर्थ है उच्चारण पूर्वक उच्चारण है, अर्थात् गुरु उच्चारण करता है तथा शिष्य उस उच्चारण को सुन कर वैसा ही उच्चारण करता है। यह संशन करने वाला वैदिक है। इसप्रकार उच्चारण शब्द का होता है अतः यहाँ वेद की शब्दरूपता सिद्ध होती है। सूत्र में विद् धातु ज्ञानार्थक है एवं ज्ञान से यहाँ अर्थ ज्ञान अपेक्षित है। अर्थात् जो वेदार्थ को जानता है वह भी वैदिक है। इस प्रकार वेद की अर्थरूपता भी सिद्ध होती है। इसलिए अधि पूर्वक इक् धातु तथा विद् धातु दोनों का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार वेद के मुख्य अङ्गभूत व्याकरण से शब्दार्थोभय का वेदत्व प्रतिपादित किया गया है।

इस प्रकार काव्यात्मभूत रस अथवा ध्वनि का व्यञ्जक जिस प्रकार शब्द है उसी प्रकार अर्थ भी है। एवं ध्वनिकार आनन्दवर्धन भी ध्वनि के उपपादन में शब्द तथा अर्थ दोनों का प्राधान्य प्रतिपादन करते हैं-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

प्रकृत कारिका में वा शब्द प्राधान्यार्थक तथा समुच्चयार्थक है-

"वा विकल्पेऽथ प्राधान्ये सादृश्येऽथ समुच्चये"[30]

अर्थात् व्यङ्ग्य अर्थ के प्रतिपादन में शाब्दी व्यञ्जना में शब्द का प्राधान्य तथा अर्थ की सहकारिता[31] एवं आर्थी व्यञ्जना में अर्थ का प्राधान्य तथा शब्द की सहकारिता।[32] अतः शब्द एवं अर्थ दोनों ही प्रधान होते हैं। इसी को साहित्य (सहभाव) कहते हैं। अतः शब्दार्थोभय काव्य हैं यही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

2.2. शब्दर्थोभयकाव्यवादी आचार्यों के काव्यलक्षण तथा विश्लेषण -

2.2.1. भरतमुनि

आचार्य भरतमुनि नाट्यशास्त्र में काव्य स्वरूप का प्रतिपादन यद्यपि नहीं करते हैं तो भी प्रसङ्गतः आचार्य ने काव्य की सात विशेषताएँ कहीं हैं, जिसमें शब्दार्थ युगल की ही काव्यता सिद्ध होती है-

"मृदुललित पदाढ्यं गूढशब्दार्थ हीनं,
बहुजनसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृत रसमार्गं सन्धिसन्धानयुक्तं
स भवति शुभकाव्यं नाटकप्रेक्षकाणाम्॥"[33]

मृदुललितपदावली, गूढशब्दार्थहीनता, सर्वसुगमता, यक्तिमत्ता, नृत्योपयोगयोग्यता, बहुकृतरसमार्गता एवं सन्धियुक्तता ये काव्य की सात विशेषताएं आचार्य ने कहीं हैं इनमें नृत्योपयोगयोग्यता एवं सन्धियुक्तता नाट्यमात्र के लिए हैं विशेषताएं दृश्यश्रव्य उभयसाधारण हैं। इनमें से गूढशब्दार्थहीनता कदाचित् शब्दार्थोभयकाव्यवादी धारा को पुष्ट करती है।

2.2.2. भामह

---

[28] म०भा०प०

[29] पा०सू० ४/२/५९)

[30] इति कोशात्।

[31] अर्थोऽपि व्यञ्जकस्तत्र सहकारितया मतः।(काव्यप्रकाश द्वितीय उल्लास, पृ॰ 70)

[32] अर्थस्य व्यञ्जक्त्वे तत् शब्दस्य सहकारिता।(काव्यप्रकाश तृतीय उल्लास, पृ॰ 81)

[33] नाट्यशास्त्र १६/१२९।

आचार्य भामह शब्दार्थ के सहभाव को काव्य कहते हैं-

"शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"[34]

यद्यपि भामह प्रतिपादित काव्यलक्षण में दोषभाव गुण तथा अलङ्कार का समावेश नहीं है तो भी सम्पूर्ण ग्रन्थ स्वारस्य से दोषरहित गुणालङ्कारविशिष्ट शब्दार्थ का सहभाव काव्य है यह काव्यलक्षण फलित होता है।

आचार्य भामह काव्य में दोष का सर्वथा अभाव प्रतिपादित करते हैं। दुष्टपुत्र के समान दोष युक्त काव्य कवि की निन्दा का कारण बनता है।-

"सर्वथा पदमप्येकं न निगद्यमवद्यवत्।

विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते॥"{काव्यालङ्कार पृ॰ 4}

पुनः आचार्य दोषाभाव की अनिवार्यता को प्रतिपादित करते हुए कुकवित्व को कवि का साक्षात् मरण ही लिखते हैं-

"नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा।

कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः॥" {काव्यालङ्कार पृ॰ 4}

इस प्रकार आचार्य भामह दोषरहित शब्दार्थ के सहभाव को काव्य प्रतिपादित करते हैं।

आचार्य 'शब्दाभिधेयालङ्कारभेदादिष्ट द्वयं तु नः'[35] इस कारिका द्वारा काव्य में चमत्काराधायक तत्त्व अलङ्कार को माना है, वह शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार भेद से दो प्रकार का है, दोनों को स्वीकार किया है। इनका अलङ्कार और अलङ्कृति शब्द व्यापक है, अपने दोषाभाव गुण तथा रस को समाहित किए हुए है। ये रस को भी रसवदलङ्कार ही कहते हैं।

2.2.3. वामन

वामन ने काव्य की उपादेयता अलङ्कारों से मानी है। काव्य में सौन्दर्य का आधान दोषों के अभाव से तथा गुणों और अलङ्कारों के ग्रहण से होता है। गुणों और अलङ्कारों में इन्होनें गुणों को काव्य का नित्य धर्म माना है, अलङ्कारों को अनित्य।[36]

काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्।' काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कारसंस्कृतयोः शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते। सौन्दर्यमलङ्कारः। स दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम्।।[37]

2.2.4. आनन्दवर्धन

आचार्य का मुख्य प्रतिपाद्य विषय काव्यात्मा ध्वनि है तो भी प्रसङ्गवश अभाववाद का मत निरूपण करते हुए इन्होनें काव्य का लक्षण भी कहा है 'काव्य का शब्द और अर्थ शरीर है, शब्द में चारुता के हेतु शब्दालङ्कार हैं, अर्थ में चारुता लाने वाले अर्थालङ्कार हैं सङ्घटना के धर्म गुण हैं। रीति और वृत्ति इन्हीं में समाहित हैं (शब्दार्थशरीरं तावत् काव्यम् .... प्रथम अभाववाद।'

प्रसिद्ध प्रस्थान से भी यही अभीष्ट है ''तौ शब्दार्थौ महाकवेः''[38], 'व्यङ्ग्यव्यञ्जकाभ्यामेवसुप्रयुक्ताभ्याम्'[39]

2.2.5. राजशेखर

राजशेखर ने काव्यपुरुषोत्पत्ति प्रकरण में सरस्वती के मुख से काव्य का स्वरूप वर्णन कराया है। शब्द और अर्थ तुम्हारे शरीर हैं। तुम सम, प्रसन्न, मधुर, उदार एवं ओजस्वी हो (ये गुण हैं)। अनुप्रास उपमादि तुम्हें अलङ्कृत करते हैं। रस तुम्हारी आत्मा है। शब्दार्थौ ते शरीरम् ..... समप्रसन्नो मधुर-उदार-ओजस्वी चासि। रस आत्मा .... अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति।'[40]

---

[34] काव्यालङ्कार १/६।

[35] का०लं० १/१५।

[36] पूर्वे नित्याः (काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति ३/१/३)।

[37] काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति १-२।

[38] ध्वन्या० १/८।

[39] वही वृत्ति।

[40] काव्यमीमांसा ३/१५ पृ०।

2.2.6. रुद्रट

आचार्य रुद्रट ने 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'[41] कहकर भामह का अनुसरण किया है।

2.2.7. अभिनवगुप्तपादाचार्य

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने काव्यलक्षण के विषय में आनन्दवर्धन का मत स्वीकार किया है- 'लोकशास्त्रातिरिक्तसुन्दरशब्दार्थोभयस्य काव्यस्य'।[42]

2.2.8. भोजराज

आचार्य भोजराज ने भी दोषरहित गुणविशिष्ट, अलङ्कारों से अलङ्कृत, रसान्वित को काव्य कहा है-

'निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम् ।'

रसान्वितं कविः कुर्वन् .....।।[43]

इस पर रत्नदर्पण टीका में रत्नेश्वर ने स्पष्ट कहा है- 'यद्यपि काव्यशब्दो दोषाभावादिविशिष्टावेव शब्दार्थौ ब्रूते तथापि लक्षणया शब्दमात्रे प्रयुक्तः'[44]

2.2.9. कुन्तक

आचार्य कुन्तक के मत में शब्द और अर्थ दोनों में चमत्काराधान की क्षमता होती है अतः शब्द और अर्थ दोनों का सहभाव काव्य है।

सहभाव अथवा साहित्य - कवि के विवक्षित अर्थ का एक मात्र वाचक शब्द हो और सहृदयों को आनन्दित करने वाला स्वभावतः सुन्दर अर्थ इन दोनों का परस्पर स्पर्धाधिरूढ होना साहित्य है।

शब्द तथा अर्थ दोनों का अलङ्कार वक्रोक्ति है। अतः 'वक्रता विशिष्ट कवि व्यापार से शोभित होने वाले बन्ध (वाक्य विन्यास) में व्यवस्थित शब्दार्थ युगल का सहभाव काव्य है जो सहृदयों को आनन्दित करता है।'

''शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।

बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।''[45]

2.2.10. मम्मट

आचार्य मम्मट ने अपने ग्रन्थ काव्यप्रकाश में चमत्कार के जनक अर्थ विशेष से सम्बद्ध शब्द तथा शब्द विशेष से प्रतिपादित अर्थ दोनों को काव्य प्रतिपादित किया है -

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि'।[46]

प्रकृत लक्षण में लक्ष्य तत्[47] पद बोध्य 'काव्यम्' है, तथा लक्षण 'शब्दार्थौ' है। लक्षणभूत शब्दार्थौ पद के तीव विशेषण हैं - अदोषौ, सगुणौ, अनलङ्कृती पुनः क्वापि। इस प्रकार दोष रहित, गुण विशिष्ट एवं सर्वत्र स्फुट अलङ्कार से युक्त तथा कहीं अस्फुट अलङ्कार से युक्त होने पर भी शब्दार्थ काव्य हैं।

---

[41] काव्यालङ्कार २/१।

[42] लोचन पृ० १५।

[43] सरस्वती कण्ठाभरण १/२।

[44] सर०क० पृ० ३।

[45] वक्राक्ति १/७।

[46] काव्यप्रकाश प्रथम उल्लास।

[47] 'तत्' पद सर्वनाम है, यत् तत् आदि सर्वनाम पदों की शक्ति "यत्-तदोः बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वेनोपलक्षित तत्तद्धर्मावच्छिन्ने शक्तिः" में होती है। अर्थात् सर्वनाम पद पूर्व के परामर्शक होते हैं।

शब्दार्थौ यहाँ अर्थ का आश्रय होने से तथा अर्थ के भी शब्दप्रतिपाद्य होने से शब्द को पहले कहा गया है। इसीलिए 'नामरूप व्याकरवाणि' इत्यादि वैदिक प्रयोगों तथा 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'[48] इत्यादि लौकिक प्रयोगों में शब्द का प्राथम्य है।

2.2.11. हेमचन्द्र

आचार्य हेमचन्द्र ने मम्मट का ही अनुसरण किया है, वे दोषरहित गुण युक्त, अलङ्कार युक्त शब्दार्थ युगल को काव्य माना है। प्रायः परवर्ती आचार्यों ने मम्मट का ही अनुसरण किया है।

"अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम् ।"[49]

2.2.12. वाग्भट

वाग्भट ने उस साधु (निर्दोष) शब्द और अर्थ के सन्दर्भ को काव्य माना है, जो गुणालङ्कार से भूषित हो और रीति तथा स्फुट रस से युक्त हो।

"साधुशब्दार्थसन्दर्भ गुणालङ्कारभूषितम् ।

स्फुटरीतिरसोपेतं काव्यम् .....।।"[50]

2.2.13. गोविन्दठक्कुर

आचार्य ठक्कुर ने मम्मटाभित काव्य लक्षण घटक अनलङ्कृती पद की व्याख्या करते हुए स्वीकार किया है 'चमत्कारसारं काव्यम् ' चमत्कार का सार काव्य है और चमत्कार का जनक रसादि और अलङ्कार हैं। जिस काव्य में रसादि हैं वहाँ रस से ही चमत्कार हो जाएगा वहाँ स्फुट अलङ्कार की अपेक्षा नहीं है परन्तु नीरस में यदि स्फुट अलङ्कार नहीं होगा तो चमत्कार कहाँ से आएगा। 'रसादिरलङ्कारश्च द्वयं चमत्कारहेतुः .....नीरसे तु यदि न स्फुटोऽलङ्कारः स्यात् तत् किं कृतश्चमत्कारः।[51]

2.2.14. समुद्रबन्ध

समुद्रबन्ध ने अलङ्कार सर्वस्व की टीका में विशिष्ट शब्दार्थ को काव्य माना है। "इह विशिष्टौ शब्दार्थौ तावत् काव्यम्।।

2.2.15. विद्यानाथ

आचार्य विद्यानाथ ने दोष वर्जित गुणालङ्कार सहित शब्दार्थ युगल को काव्य कहा है। "गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ।"[52]

2.2.16. विद्याधर

आचार्य विद्याधर ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर माना है और ध्वनि को आत्मा कहा है। "शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विबुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः"[53]

---

[48] रघुवंशमहाकाव्यम् (1/1)

[49] काव्यानुशासनम् पृ० १९।

[50] वाग्भटालङ्कार १/२।

[51] का०प्रदीप।

[52] प्रतापरुद्र० पृ० ४२।

[53] एकावली पृ० १, १३।